कुदरत के सच और समाज

कुछ बिखरे हुए सवाल

हरजिन्दर सिंह 'लाल्टू'

यह व्याख्यान 5 नवम्बर, 2022 को *एकलव्य* के 40 साल और होविशिका के 50 साल होने के उपलक्ष्य में राज्य संग्रहालय, भोपाल में आयोजित 'होविशिका व्याख्यान शृंखला' में दिया गया था।

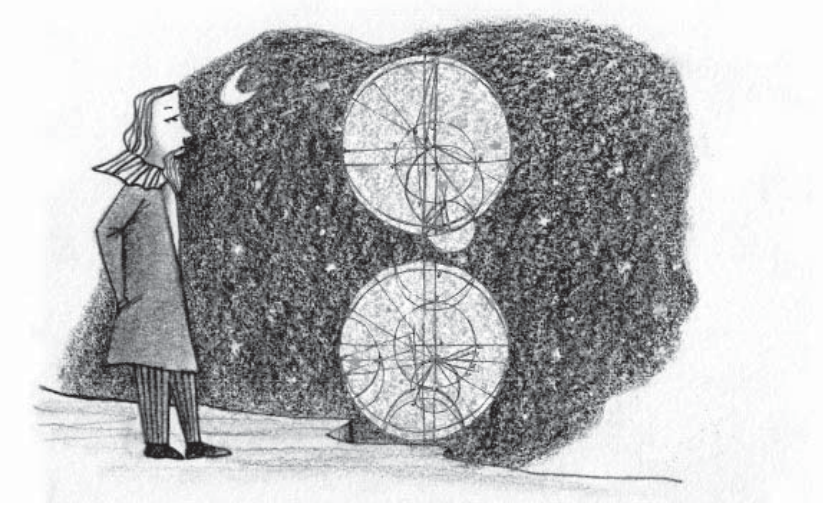

आदर्श भाषा गणित

विज्ञान की भाषा कैसी हो?: सिद्धान्त तक पहुँचने के लिए गणित के ज़रिए अमूर्त विवरण ज़रूरी है। जब तक हमें भाषा नहीं आती, अमूर्तन जटिल है, जैसे आधुनिक कला या साहित्य उनकी समझ से परे हैं, जो इसकी भाषा नहीं समझते। जटिलता को सहज बनाने के लिए अमूर्तन ज़रूरी है। मनोविज्ञान और मानव-शास्त्र जैसे विषयों में हमेशा गणितीय विवरण मुमकिन नहीं है, पर आदर्श भाषा गणित की ही है। पिछली सदी से बहुत सारा काम सैद्धान्तिक या गणना का हो रहा है और इनसे मिले नतीजों का प्रयोगों में इस्तेमाल हो रहा है। गणित विज्ञान की भाषा है।

साहित्य और कला में, अमूर्तन अनेकार्थी होता है, पर विज्ञान में गणित का इस्तेमाल स्पष्ट मायनों के लिए किया जाता है। अक्सर बड़े सवालों को सहज और सुन्दर ढंग से गणित की भाषा में कहा जाता है। चूँकि हर कहीं गणित की पढ़ाई उम्दा स्तर की नहीं होती, इस वजह से विज्ञान का एक एलीट स्वरूप दिखता है। ज़ाहिर है कि गैरबराबरी वाले समाज में यह बड़ी समस्या हो जाती है। होविशिका के समान्तर, समाज-विज्ञान की तालीम का कार्यक्रम शुरू हुआ था, पर गणित पर कोई विशेष पहल न ली गई, यह सवाल रह जाता है।

विज्ञान के मॉडल और आलोचना

गणित के इस्तेमाल की एक मिसाल लेते हुए बात आगे बढ़ाते हैं।

कुदरत के जटिल खेल को सीमित दायरों में घेरकर टुकड़ों में मॉडल बनाना आधुनिक विज्ञान की नींव है। सरलीकरण विज्ञान की ताकत भी है और सीमा भी है। जटिल को समझने के लिए टुकड़ों में देखना एक औज़ार ज़रूर है, पर यह मीमांसा का एक पक्ष है, कहानी यहाँ खत्म नहीं होती है। मसलन, हम पारिस्थितिक सन्तुलन को समझने के लिए पूरे जीव-जगत का मॉडल बनाने की कोशिश करें तो कभी सफल नहीं हो पाएँगे। एक छोटा मॉडल दो जानवरों का हो सकता है, जैसे लोमड़ी और खरगोश। 1921 में लोटका ने इस तरह का मॉडल बनाया। इसे प्रे-प्रीडेटर (शिकार-शिकारी) मॉडल कहा जाता है। बहुत सारी लोमड़ियाँ हों या बहुत कम खरगोश हों तो दोनों जानवर जल्दी ही खत्म हो जाएँगे। अगर दोनों अच्छी तादाद में हों तो एक सन्तुलित स्थिति बनती है। इस मॉडल के आधार पर चित्र बनाए जाते हैं। वैज्ञानिक इन चित्रों में आकार (ज्यामिति) देखता है, उन्हें एल्जेबरा से समझता है। फिर वह राशियों में बदलाव को समझता है, जिसके लिए कैलकुलस का गणित है। अगर राशियों में संयोग का पुट भी हो तो स्टैटिस्टिक्स यानी सांख्यिकी का इस्तेमाल करना होगा। संयोग से बचें तो आज कम्प्यूटर पर यह गणना तकरीबन एक सेकण्ड में की जा सकती है। इस एक सेकण्ड में मिले आँकड़ों से हम कुदरत में जीव-जगत में सन्तुलन को समझने की शुरुआत करते हैं। जटिल को समझने की शुरुआत सहज मॉडल के ज़रिए करना इन्सान की फितरत है। जैसे-जैसे हम सरल से जटिल की ओर बढ़ते हैं, गणना मुश्किल होती जाती है। एक अच्छा वैज्ञानिक इस बात को जानता है और अपने काम पर बात करते हुए वह पहले अपनी पूर्व-धारणाओं को बतलाता है। इन्सान की सामान्य सोच भी कुदरती तौर पर ऐसी ही होती है। इसलिए जिन्हें लगता है कि जटिल को सहज

संरचना में देखना मात्र ही विज्ञान है, वे वैज्ञानिक पद्धति को बिना जाने ही अनुमान लगा रहे होते हैं।

मॉडल बनाना विज्ञान का महत्वपूर्ण अंग है। भारत में कोरोना की बीमारी के आँकड़ों को देख सकते हैं। तरह-तरह के मॉडल सामने आए और इनके ज़रिए यह देखा गया कि लॉक-डाउन होने या न होने से क्या कुछ हो सकता है। ये वैज्ञानिक पद्धति के इस्तेमाल की बेहतरीन मिसाल थीं। इनके पीछे जो सोच है, उसे अक्सर वैज्ञानिक सोच कहते हैं।

वैज्ञानिक सोच

क्या वैज्ञानिक सोच या दृष्टि हमें अनुमान, अवलोकन, कुदरत के नियम से सिद्धान्तों तक की यात्रा पर ले चलती है? वैज्ञानिक सोच के बिना हम इस यात्रा में आगे नहीं बढ़ सकते, पर सोच ही पद्धति नहीं है। वैज्ञानिक खोज की प्रवृत्ति बुनियादी इन्सानी फितरत है, पर कोई सिद्धान्त तभी वैज्ञानिक कहलाता है, जब वह उन विशेषताओं पर खरा उतरे, जो वैज्ञानिक पद्धति के साथ जुड़ी हैं। दूसरी ओर यह भी होता है कि कोई अपने काम में सटीक वैज्ञानिक पद्धति का इस्तेमाल कर रहा है, पर वह वैज्ञानिक सोच को नहीं अपना पाया है। भारतीय वैज्ञानिकों में यह आम बात है। इसलिए उच्च-स्तरीय प्रशिक्षण और भरपूर सुविधाओं के बावजूद हमारा काम अक्सर पश्चिम में हो रहे शोध की नकल मात्र रह गया है। हमारे सामाजिक-राजनैतिक विचारों में पिछड़ापन भी इसी वजह से है।

आलोचना के कुछ और अहम बिन्दु

इन सबसे अलग कुछ बातें ऐसी हैं जो विज्ञान की संरचना से जुड़ी हैं। जैसे प्रयोग करते हुए किसी वस्तु या प्राणी से छेड़छाड़ किस हद तक हो, इसकी सीमा क्या हो। जीनोमिक्स-डी-एन-ए-टेक्नोलॉजी और नाभिकीय विकिरण आदि पर शोध के खतरनाक नतीजे हो सकते हैं। पेशेवर वैज्ञानिकों ने अपने लिए नैतिक मानदण्ड बनाए हैं, और राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के कानून हैं, जो जन्तुओं पर हिंसा या किसी भी नुकसानदेह शोध पर रोक लगाते हैं। ये कानून किस हद तक लागू हों, यह स्थानीय लोगों पर निर्भर करता है। शोध के सवालों के चयन को लेकर भी समस्याएँ हैं। विज्ञान में सामुदायिक स्वीकृति अहम है, इसलिए उन सवालों पर ज़्यादा काम होता है, जिन्हें पश्चिमी मुल्कों के वैज्ञानिक अहमियत देते हैं। भारत में पचास साल पहले कैंसर की बीमारी पैसे वालों और यक्ष्मा (तपेदिक) गरीबों की बीमारी थी, पर शोध का ज़्यादातर काम कैंसर पर ही हो रहा था। प्रजनन और जन्म-निरोध पर स्त्रियों के साथ खतरनाक प्रयोग किए गए, जबकि पुरुष के जननांग जिस्म के बाहरी ओर होने से उन पर प्रयोग कहीं ज़्यादा आसान होता।

स्त्रीवादी आलोचना

गम्भीर स्त्रीवादी आलोचना पेशे में प्रतिनिधित्व के सवाल से आगे जाती है। शोध में सवालों के चयन और विज्ञान की भाषा आदि को लेकर सवाल उठाए जाते हैं। 1988 में *Hypatia* पत्रिका में Biology and Gender Study Group की ओर से आए एक लेख[1] में कहा गया:

"Biology is seen not merely as a privileged oppressor of women but as a co-victim of masculinist social assumption. We see feminist critique as one of the normative controls that any scientist must perform whenever analysing data ... Narratives of fertilisation and sex-determination traditionally have been modeled on the cultural patterns of male/female interaction, leading to gender associations being placed on cells and their components... masculinist assumptions have impoverished biology by causing us to focus on certain problems to the exclusion of others, and they have led us to make particular interpretations when equally valid alternatives were available."

"बायोलॉजी में महज़ स्त्रियों की प्रताड़ना की खासियत ही है, ऐसा नहीं, बल्कि एक विषय के रूप में बायोलॉजी अपने आप में पुरुष-प्रधान सामाजिक मान्यताओं का शिकार होने में भी भागीदार है। हर वैज्ञानिक को आँकड़ों का विश्लेषण करते हुए स्त्रीवादी आलोचना को एक शर्त की तरह ध्यान में रखना चाहिए। ... पारम्परिक रूप से निषेचन और लिंग-

[1] *Hypatia Vol. 3, No. 1, Spring, 1988, Feminism and Science, Wiley on behalf of Hypatia, Inc.*

जाँच के मॉडल स्त्री और पुरुष के बीच सांस्कृतिक टकराव के आधार पर बने हैं, जिसकी वजह से कोशिकाओं और उनके अन्दर के हिस्सों पर भी जेंडर की खासियत चस्पा कर दी गई है। ...पुरुष-प्रधान मान्यताओं की वजह से जीव-विज्ञान को यह नुकसान हुआ है कि हम कुछ सवालों को छोड़कर, कुछ पर गौर करते हैं, जिनसे खास किस्म के निचोड़ निकाले गए हैं, जब कि इतनी ही सही कुछ और वैकल्पिक समझ भी बन सकती थी।"

स्त्रीवादी आलोचना यह आग्रह रखती है कि वैज्ञानिक प्रयोगों को करते हुए जेंडर से जुड़े पूर्वाग्रहों पर सोचना और उनसे बचना या उनसे निजात पाना बा-कायदा ज़रूरी है, यानी इसे experimental control (प्रायोगिक नियंत्रण की शर्त) मानना ज़रूरी है। मसलन, यह आम सोच है कि प्रजनन में पुरुष के लाखों शुक्राणुओं में से कोई एक-दो स्त्री के गर्भाशय की नाल में अण्डाणु को निषेचित (fertilise) करते हैं। इसका वैकल्पिक विवरण यह हो सकता है कि स्त्री के गर्भाशय में अण्डाणु किसी एक-दो शुक्राणु को स्वीकार करता है। भाषा सत्ता-समीकरण को बदल देती है। पुरुष-प्रधान वैज्ञानिक समुदाय में पितृसत्ता हावी रहेगी, इसमें अचरज नहीं है। विज्ञान से मूल्य-निरपेक्ष होने की अपेक्षा है, जो मुमकिन नहीं लगती।

बात सिर्फ जेंडर की नहीं

मैंने इन बातों को गहराई से नहीं पढ़ा है, पर सतह से नीचे जाने की कोशिश की है। बात सिर्फ जेंडर की नहीं, बल्कि हर तरह के पूर्वाग्रहों के लिए यह सोचना ज़रूरी है। कुदरत के सच ढूँढ़ते हुए हम दरअसल अपने सच उजागर कर रहे होते हैं। सत्य की तलाश में हर तरह की सामाजिक पहचान के साथ लोहा लेना होगा। तो सवाल यह है कि क्या विज्ञान पढ़ने-पढ़ाने में कुदरत के कायदों के अलावा सामाजिक कायदों पर भी सवाल उठाने हैं। यानी प्रकृति-विज्ञान और समाज-विज्ञान को एक-दूसरे से अलग नहीं कर सकते। इस प्रसंग में चुनिन्दा दो बातें रख रहा हूँ जो बेचैनी की सबब रही हैं।

भाषा का मुद्दा

एक बात जो बहुत पहले ही साफ दिखने लगी थी, वह भाषा से जुड़ी है। होविशिका की किताबों, यानी बाल-वैज्ञानिक, में भाषा को आसान रखने की पूरी कोशिश थी, पर हिन्दी में लिखी विज्ञान की दीगर किताबों में विज्ञान की भाषा जटिल थी और आज भी है। शायद 1988 में मैंने ज्ञानरंजन को लिखा कि हिन्दी में विज्ञान-लेखन की भाषा हिन्दी भाषियों के खिलाफ षड़यंत्र है। इसके बाद जब भी मौका मिला है, लगातार इस बारे में मैं कहता रहा हूँ। होविशिका में काम कर रहे साथियों के साथ भी

चर्चाएँ हुई हैं। यह माँग कि विज्ञान की एक मानक शब्दावली होनी चाहिए - यह बात मुझे तंग करती रही है। इसके पीछे समझ यह है कि यूरोपी ज़बानों में विज्ञान की तरक्की के साथ मानक भाषा बनती चली थी। यह बात सच है, पर एक तरह का अर्द्ध-सत्य है। नवजागरण में पहला हमला भाषा पर हुआ था। धर्म और दर्शन की किताबों को जनता की भाषा में लिखने की माँग थी। गौर कीजिए कि हमारे यहाँ भी भक्ति आन्दोलन पण्डितों की भाषा में नहीं हुआ था - फरीद, वासक्ना से लेकर कबीर, नानक, लालन तक – यह हमेशा ही जनता की भाषा में हुआ था। पश्चिम में विज्ञान की भाषा लगातार सरल और सहज होती रही है। इसके उलट हमारे यहाँ पिछले डेढ़ सौ सालों में कृत्रिम संस्कृतनिष्ठ शब्दावली गढ़ी गई।

पिछली सदी के बड़े वैज्ञानिकों में से एक रिचर्ड फाइनमैन ने छोटे बच्चों को विज्ञान सिखाने की भाषा के मुद्दे पर कहा है कि शब्द सीखना ज़रूरी है, पर पहले हमें विज्ञान सीखना है। चाबी घुमाने पर खिलौना क्यों चलता है, इसके जवाब में 'एनर्जी' शब्द पर प्रतिक्रिया देते हुए वे कहते हैं कि आप तो यह कह दो कि खुदा खिलौना चला रहा है। हिन्दुस्तानी ज़बानों में विज्ञान की

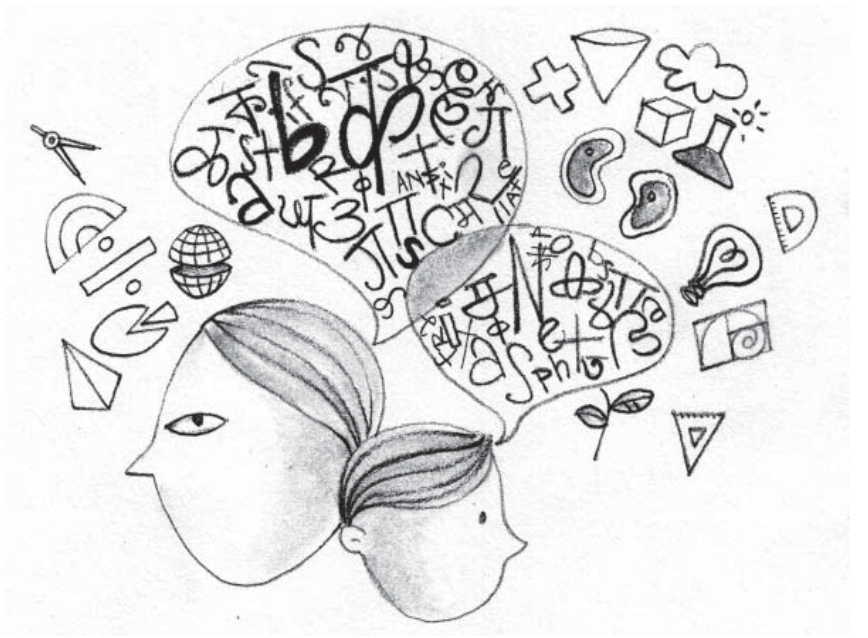

शब्दावली को आप मज़ाक कह सकते हैं या एक खौफनाक सपना। किसी ज़बान को कत्ल करने का इससे बेहतर कोई तरीका नहीं हो सकता है। मेरी सीमित समझ यह है कि विज्ञान पढ़ाते हुए हमें अपनी तमाम ज़िन्दा ज़बानों में मौजूद तकनीकी शब्दावली को वापस ढूँढ़ लाना, साथ-साथ करना होगा।

आलोचनात्मक सोच?

दूसरी बेचैनी यह सवाल है कि विज्ञान की पढ़ाई से आलोचनात्मक सोच किस हद तक बढ़ी है। मसलन, मेर्टन के विवरण मुताबिक सार्वभौमिकता की कोई समझ हममें बनी है क्या? भारतीय मूल के किसी अमेरिकन वैज्ञानिक की कामयाबी पर हम उसके विज्ञान पर कम और उसके भारतीय मूल के होने पर ज़्यादा शोर मचाते हैं। दक्षिण एशिया में देश और परम्परा के नाम पर हमें कोई भी बहका सकता है। देशभक्ति के नाम पर सियासी लुटेरे जो कहर बरपा रहे हैं, क्या विज्ञान का इससे कोई लेना-देना नहीं है? देश और देशभक्ति पर पंजाबी के दलित कवि लाल सिंह दिल की कविता 'मातृभूमि' याद आती है (अनुवाद - सत्यपाल सहगल) -

प्यार का भी कोई कारण होता है?
महक की कोई जड़ होती है?
सच का हो न हो मकसद कोई
झूठ कभी बेमकसद नहीं होता!

तुम्हारे नीले पहाड़ों के लिए नहीं
न नीले पानियों के लिए
यदि ये बूढ़ी माँ के बालों की तरह
सफेद-रंग भी होते
तब भी मैं तुझे प्यार करता
न होते तब भी
मैं तुझे प्यार करता
ये दौलतों के खज़ाने मेरे लिए तो नहीं
चाहे नहीं
प्यार का कोई कारण नहीं होता
झूठ कभी बेमकसद नहीं होता

खज़ानों के साँप
तेरे गीत गाते हैं
सोने की चिड़िया कहते हैं।

लाल सिंह दिल वैज्ञानिक नहीं थे, पर देशभक्ति पर आलोचनात्मक सोच उनमें थी, जो वैज्ञानिकों में नहीं दिखती।

पिछले कई दशकों से धरती पर तरह-तरह के संकट छाए हुए हैं, जिनकी एक बड़ी वजह बड़े पैमाने पर जंगी असलाह का व्यापार और चारों ओर बढ़ता फौज-तंत्र है। क्या विज्ञान इस बारे में आलोचनात्मक ढंग से सोचने की काबिलियत पैदा करता है? पिछली सदी में जंगें और मुनाफाखोरी ने विज्ञान की दिशा तय करने में बड़ी भूमिका दिखलाई है, जैसे इनकी वजह से नाभिकीय ऊर्जा, सूचना के विज्ञान और आधुनिक दवाओं के उत्पादन आदि जैसे विषयों

में बड़ी तरक्की हुई है। यह केवल टेक्नोलॉजी की बात नहीं है, बुनियादी विज्ञान में बड़ी तरक्की सामाजिक ताकतों की घुसपैठ से हुई है। आज जंगें लड़ने वाले दफ्तरी क्लर्कों जैसे शख्स हैं, जो धरती के एक छोर पर बैठे, विशाल भौगोलिक और मनोवैज्ञानिक दूरियाँ लाँघकर धरती के दूसरे छोर पर, ड्रोन और लेज़र की मदद से precision killing यानी ऐन निशाने के कत्ल करते हैं, जिनमें अक्सर गलतियाँ होती हैं और आम नागरिक मारे जाते हैं। क्या विज्ञान पढ़ते-पढ़ाते हुए हम इन बातों को नज़रअन्दाज़ कर सकते हैं?

मेरी बेचैनी

मैं अक्सर सोचता हूँ कि 1988 में हरदा में मेरे अन्दर जो चीखता था कि दीवारों पर लिखे फतवे कि 'हिन्दुस्तान में रहना है' तो कैसे रहना होगा, गलत हैं, वह शख्स कैसे सामने आता? मेरी ट्रेनिंग मुझे बतलाती है कि नहीं, विज्ञान के साथ इसका कोई लेना-देना नहीं है कि आप विक्षिप्त हो रहे हैं, या कि आप आसपास विक्षिप्त हो रहे समाज से परेशान हैं। तो आखिर हमारा मकसद क्या था, क्या वह महज़ एक कीट के जीवन-चक्र को समझने का था, या कि संयोग और सम्भाविता के अध्याय से प्रेरित होकर बेंगलूरू की विज्ञान अकादमी की पत्रिका में एक परचा लिखने तक का था? मैं जनविज्ञान में सक्रिय दीगर संस्थाओं के साथ जुड़ा रहा हूँ। अक्सर मीटिंग में सवाल उठाता हूँ कि हमारे बीच स्त्रियों या हाशिए पर खड़े दूसरे तबकों के लोगों की तादाद कम है। बात चलती है तो हर कोई कहता है कि हमें इस हाल को सुधारना है, मैं नाम पेश करता हूँ जिनसे हमें बात करनी चाहिए और साथ लाना चाहिए, कोई ना नहीं कहता, पर पाँच साल, छ: साल गुज़र जाते हैं और कुछ नहीं होता। आखिर मैं चुप कर जाता हूँ। यह विज्ञान का सवाल नहीं है, पर ऐसा है तो मैं विज्ञान या जन-विज्ञान से जुड़कर क्या कर रहा हूँ? मुझे ये सवाल बेचैन करते हैं। इसका पारम्परिक जवाब यह है कि विज्ञान और समाज, दो अलग खित्ते हैं, जैसे आधुनिक विज्ञान और मज़हब, दो अलग खित्ते हैं, जिनको जबरन जोड़ने की नाकामयाब कोशिश में विपुल परिमाण कागज़ खपाया गया है।

विज्ञान जन-संघर्ष नहीं है। मुमकिन है कि जनविज्ञान आन्दोलन में सामाजिक पूर्वाग्रहों की समझ और उनसे बचने के सवाल को भी विज्ञान-कर्म की सावधानियों में से एक माना जाता तो हम पाठचर्या और पाठ्यक्रम में खास बदलाव देख पाते, जो हमें आसपास हो रही सामाजिक घटनाओं के बारे में कुछ कहते - क्या कहते, यह तो नहीं कहा जा सकता, पर कुछ कहते। मैं ठीक नहीं जानता कि

वह कैसे बदलाव होते, क्योंकि मैं अपनी ट्रेनिंग की वजह से पारम्परिक सोच में कैद हूँ। यह ज़रूर है कि इंकलाबी समाजों में विज्ञान और दीगर पेशों में स्त्रियों की भागीदारी बढ़ी है, जैसा न केवल क्यूबा या इंकलाबी रूस या चीन में देखा गया है, बल्कि ईराक, लीबिया, सीरिया तक में हुआ है, जिन्हें हाल के दशकों में अमेरिकी साम्राज्यवादी हमलों ने तबाह कर दिया है। क्यूबा के बारे में जग-ज़ाहिर है कि सेहत के खित्ते में उस छोटे मुल्क ने कमाल की तरक्की हासिल की है। पश्चिमी मुल्कों में पिछले दशकों में यह समझ पुख्ता हुई है कि विविधता से सामूहिक काबिलियत और उत्पादन, दोनों में बढ़त आती है। आज सुबह ही मैंने American Institute of Physics की पत्रिका *Physics Today* में थोमास दुराकीविक्ज़ के एक लेख में ये पंक्तियाँ पढ़ीं -

'Diversity is the source of rich, vibrant, and fruitful discussion, a cornerstone of modern science. Only through bringing together and connecting researchers from different backgrounds, cultures, disciplines, and views can we make progress.'[2]

'विविधता से गहन, जोशीली और मानीखेज़ चर्चाएँ मुमकिन हो पाती हैं जो आधुनिक विज्ञान की बुनियाद है। अलग-अलग पृष्ठभूमि, संस्कृति, विधाओं से और भिन्न नज़रिए वाले शोधकर्ताओं को इकट्ठा कर और उन्हें जोड़कर ही हम तरक्की कर पाएँगे।'

अकादमिक पत्रिकाओं में छपे ऐसे दर्जनों आलेख आपको इंटरनेट पर दिख जाएँगे।

विज्ञान का औचित्य

वापस विज्ञान के औचित्य पर आते हैं। जिन संकटों से हम गुज़र रहे हैं, उनके मद्दे-नज़र यह सोचना ज़रूरी है कि अगर विज्ञान के साथ इन बातों का लेना-देना नहीं है, तो क्या विज्ञान का कोई औचित्य भी है? कुदरत और कुदरत के साथ हमारे रिश्ते पर मनन सुन्दर है, एक तरह का गहन अध्यात्म है, पर कुदरत तब तक मानीखेज़ है, जब तक हम ज़िन्दा हैं। Cogito ergo sum – संज्ञान में आती बातों से ही मेरा वजूद है। देकार्त का कालजयी कथन आधुनिक विज्ञान की शुरुआत है। इसलिए जो संकट हमारे जीवन के लिए खतरनाक हैं या अगर हम ज़िन्दा रह भी गए तो इन संकटों के साथ कैसी ज़िन्दगी जी रहे हैं हम, जहाँ हमारे दिलों से मोहब्बत खत्म हो रही है और नफरत के सौदागर हमें अपना गुलाम बना रहे हैं। फिर से सोचता हूँ कि हमें conceptual छलाँगें मारनी होंगी। क्या हम ये छलाँगें ले पा रहे हैं? क्या हमारी पहचान हमें ऐसा करने देती है?

[2] Tomasz Durakiewicz, Physics Today 75, 11, 10 (2022)

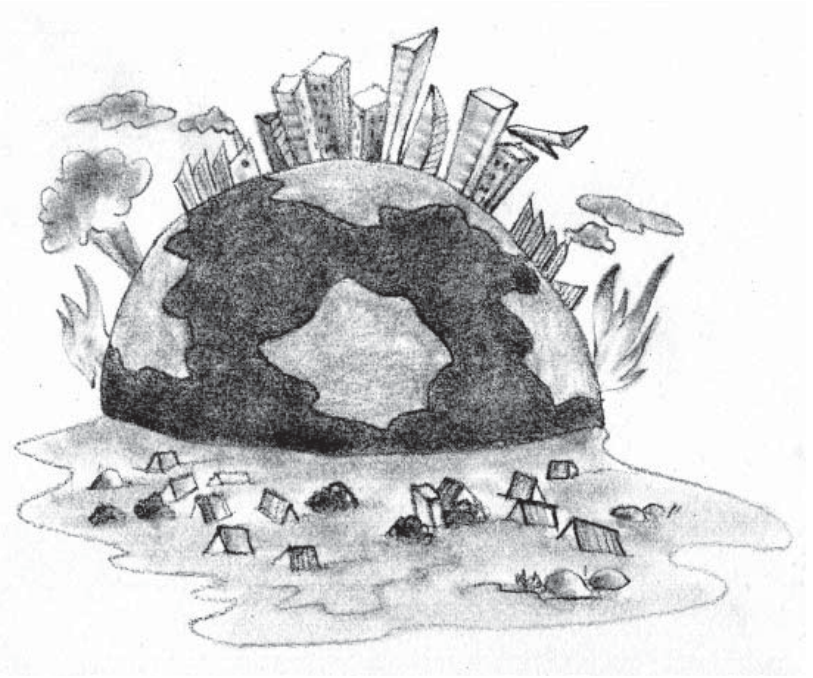

ढाई आखर प्रेम

जो अँधेरा ज्ञान से ही उपजता है, वह घमण्ड जो हर ज्ञानी में दिखलाई पड़ता है, उससे हम कैसे बचें? अक्सर वैचारिक मतभेद की वजह से हम अलग रास्तों पर चल रहे होते हैं, पर गौर करें तो पाएँगे कि ये मतभेद सचमुच इतने गहरे होते नहीं हैं कि वे हमें साथ काम करते रहने से विमुख करें। जिन कारणों से हम साथ काम नहीं कर पाते, वे अक्सर निजी अहम् या रिश्तों की जटिलताओं से उपजे होते हैं। जो ज्ञान हमें बेहतर इन्सान न बनाए, जो अपने और दूसरों के जीवन में बेहतरी न लाए, उसका फायदा क्या! इसलिए लड़ाई सिर्फ औरों से नहीं, खुद से भी लड़नी है। गुरूदेव रवींद्र से सीखता हूँ - *आमि कान पेते रोई, ओगो आमार आपोन हृदयेर गहोनो द्वारे कान पेते रोई* - मैं एहसास जगाए रखे हूँ, अपनी रूह की गहराइयों के दर, एहसास जगाए रखे हूँ। बुल्ले शाह को सुनता हूँ - *पढ़-पढ़ इल्म हज़ार किताबां, कदे अपने आप नूँ पढ़ेया ई नईं।* उनसे पहले कबीर कह गए कि *ढाई आखर प्रेम का...*। इस ढाई आखर को पाने का कोई स्रोत नहीं है, इसे

खुद ही अपने अन्दर पाना होता है।

सवालों के बिखराव में भी कुछ सुन्दर हमेशा साथ रहता है - जो मुझे वापस विज्ञान की ओर ले आता है; आइन्स्टाइन का हर कहीं मिलता कथन, इसी से अपनी बात खत्म करता हूँ - 'अपनी पूरी ज़िन्दगी में मैंने एक बात जानी है: हकीकत के बरक्स सारा विज्ञान-कर्म बचकाना और पिछड़ा दिखता है - पर हमारे पास इससे ज़्यादा अहम कुछ भी नहीं है'।[3]

है, कुछ और अहम है। इसके बाद जो निरभय गायन है, वह अहम है। अहम है, क्योंकि वह उस मीमांसा तक हमें ले जाता है, जो अमन और मोहब्बत का विज्ञान है।

[3] One thing I have learned in a long life: all our science, measured against reality, is primitive and childlike - and yet it is the most precious thing we have. - Albert Einstein

हरजिन्दर सिंह 'लाल्टू': सेंटर फॉर कम्प्यूटेशनल नेचुरल साइंस एंड बायोइन्फॉर्मेटिक्स, आई.आई.आई.टी., हैदराबाद में प्रोफेसर। प्रिंसटन यूनिवर्सिटी, न्यू यॉर्क, यूएसए से पीएच.डी.। सन् 1987-88 में *एकलव्य* के साथ यूजीसी द्वारा स्पेशल टीचर फैलोशिप पर हरदा में रहे। आप हिन्दी में कविता-कहानियाँ भी लिखते हैं।

सभी चित्र: सौम्या मैनन: चित्रकार एवं एनिमेशन फिल्मकार। विभिन्न प्रकाशकों के बच्चों की किताबों एवं पत्रिकाओं के लिए चित्र बनाए हैं। बच्चों के साथ काम करना पसन्द करती हैं।